इक्कीसवीं सदी का हिन्दी सिनेमा और स्त्री दर्पण की झलक

-अमनप्रीत

सारांश : वर्तमान युग में सिनेमा समय-समाज का दर्पण बनकर सामने आया है। सिनेमा का उदय साहित्य से हुआ है। साहित्य के बिना सिनेमा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। समाज में जो कुछ भी घटित होता है, चाहे वो सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक, प्रेम-प्रसंग का विषय, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में अंतराल, माता-पिता और बच्चों की सोच में अंतराल और विस्थापन आदि समस्याओं को बड़े पर्दे पर दिखाने का प्रयास किया जा रहा है। सिनेमा एक ऐसी कला है, जो दृश्य-श्रव्य के साथ प्रस्तुत होती है। "हमारे यहाँ निरक्षता आज भी है, लेकिन वे सिर्फ कहने भर को साक्षर हैं। उन तक पत्र-पत्रिकाएँ या साहित्य नहीं पहुँच सकता, लेकिन सिनेमा उन तक पहुँचता है और पहुँचता रहेगा। ऐसे समाज में सिनेमा जैसे माध्यम के असर की कल्पना की जानी चाहिए।" समाज में समय के संरचना एवं प्रवृतियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। सिनेमा ने इन परिवर्तनों को पर्दे पर उतारा है। स्त्री समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है। स्त्री के बिना समाज व देश के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सदियों से स्त्री संघर्ष करती आ रही है। समाज में स्त्रियों की स्थिति उनके अधिकारों की स्वीकार्यता, पुरुषवादी मनोवृतियों से उनका टकराव, इनके प्रति स्त्री का प्रतिरोध जैसे मुद्दों को सिनेमा में प्रतिबिम्बित किया है। हिन्दी सिनेमा में स्त्री आरंभ से ही केन्द्र में रही है। फ़िल्म में स्त्री – माँ, पत्नी, बहन, प्रेमिका, देवी, खलनायिका आदि अनेक रूपों में अपनी उपस्थिति दर्जा करवाती आ रही है। हिन्दी सिनेमा के आरंभिक दौर में स्त्रियों को बहुत ही पारम्परिक एवं घरेलू रूप में दिखाया गया है लेकिन निर्देशकों ने साहस करके उन्हें पारम्परिक भूमिका से बाहर निकाल कर उनके व्यक्तित्व के सशक्त पक्ष को दर्शकों के सामने दिखाने का प्रयास किया है। "समाज की भूल"(1934), "देवदास"(1935), "बाल-योगिनी"(1936), "आदमी"(1939), "दुनिया न माने"(1937),"अछूतकन्या"(1936),"दहेज"(1950),"पतिपरमेश्वर"(1958), "हकीकत"(1964), "पूरब और पश्चिम"(1970)"कर्मा"(1986),"आदमी"(1993), जैसी फिल्मों में स्त्री की भूमिका घर-परिवार के इर्द-गिर्द ही घूमती नज़र आती है। बीसवीं सदी में आते-आते स्त्री की स्थिति में सुधार आया और अब नायिका अपनी भूमिकाओं और पटकथा का चुनाव करने लगी। इक्कीसवीं सदी में हिन्दी सिनेमा की विषयवस्तु और भी परिपक्क और प्रौढ़ हुई और स्त्री जीवन से जुड़े विविध आयाम और समस्याओं को हिन्दी सिनेमा ने अपनी विषयवस्तु का आधार बनाया। स्त्री का दायित्व प्रमुख रूप से परिवार के प्रति है, जबकि स्त्री अपनी अस्मिता को पहचान कर विस्तृत भूमि की मांग करती है। स्त्री की पीड़ा और उनके अधिकारों की लड़ाई की साझेदारी में हिन्दी सिनेमा ने साथ दिया है चाहे वह किसी भी स्तर पर किसी भी रूप में हो। आज के समय की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता स्त्री सशक्तिकरण की है। हिन्दी सिनेमा में स्त्री केंद्रित फिल्मों का प्रभाव व्यापक रूप से समाज पर पड़ा है। हिन्दी सिनेमा ने स्त्री सशक्तिकरण के रूप को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है। स्त्री

केंद्रित फिल्मों के माध्यम से समाज की अन्य स्त्रियों पर प्रभाव डालकर उन्हें एक नई पहचान दी है। सिनेमा में स्त्री का स्पष्ट विकास तथा विभिन्न पक्षों पर व्यापक और बेहतरीन बदलाव देखने को मिलते है। इस लेख को हिन्दी सिनेमा की इक्कीसवीं सदी में प्रदर्शित हुई उन फिल्मों को आधार बनाया गया हैं जिन्होनें स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका दी हैं और समाज की अन्य स्त्रियों के जीवन में नवीन चेतना का सृजन किया हैं उन्हें नई राह दिखाई हैं और समाज की पुरुषवादी मानसिकता की मान्यताओं को तोड़कर नई भावभूमि का निर्माण किया हैं।

बीज शब्द- हिन्दी सिनेमा, स्त्री, अधिकार, थप्पड़, नीरज, स्त्री की भूमिका, पितृसत्तात्मक मानसिकता।

प्रस्तावना :

वर्तमान युग में सिनेमा समय-समाज का दर्पण बनकर सामने आया है। सिनेमा का उदय साहित्य से हुआ है। साहित्य के बिना सिनेमा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। समाज में जो कुछ भी घटित होता है, चाहे वो सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक, प्रेम-प्रसंग का विषय, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में अंतराल, माता-पिता और बच्चों की सोच में अंतराल और विस्थापन आदि की समस्याओं को बड़े पर्दे पर दिखाने का प्रयास किया जा रहा है। सिनेमा एक ऐसी कला है जो दृश्य-श्रव्य के साथ प्रस्तुत होता है। "हमारे यहाँ निरक्षता आज भी है, लेकिन वे सिर्फ कहने भर को साक्षर हैं। उन तक पत्र-पत्रिकाएँ या साहित्य नहीं पहुँच सकता, लेकिन सिनेमा उन तक पहुँचता है और पहुँचता रहा है। ऐसे समाज में सिनेमा जैसे माध्यम के असर की कल्पना की जानी चाहिए।" समाज में समय के संरचना एवं प्रवृतियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। सिनेमा ने इन परिवर्तनों को पर्दे पर उतारा है। स्त्री समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है। स्त्री के बिना समाज व देश के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सदियों से स्त्री संघर्ष करती आ रही है समाज में स्त्रियां की स्थिति उनके अधिकारों की स्वीकार्यता, पुरुषवादी मनोवृतियों से उनका टकराव, इनके प्रति स्त्री का प्रतिरोध जैसे मुद्दों को सिनेमा में प्रतिबिम्बित किया है। स्त्री का दायित्व प्रमुख रूप से परिवार के प्रति है, जबकि स्त्री अपनी अस्मिता को पहचान कर विस्तृत भूमि की मांग करती है। स्त्री की पीड़ा और उनके अधिकारों की लड़ाई की साझेदारी में हिन्दी सिनेमा ने साथ दिया है चाहे वह किसी भी स्तर पर किसी भी रूप में हो। आज के समय की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता स्त्री सशक्तिकरण की है। हिन्दी सिनेमा में स्त्री केंद्रित फ़िल्मों का प्रभाव व्यापक रूप से समाज पर पड़ा है। हिन्दी सिनेमा ने स्त्री सशक्तिकरण के रूप को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है। स्त्री केंद्रित फिल्मों के माध्यम से समाज की अन्य स्त्रियों पर प्रभाव डालकर उन्हें एक नई पहचान दी है। सिनेमा में स्त्री का स्पष्ट विकास तथा विभिन्न पक्षों पर व्यापक और बेहतरीन बदलाव देखने को मिलते है।

हिन्दी सिनेमा में स्त्री आरंभ से ही केन्द्र में रही है। फ़िल्म में स्त्री – माँ, पत्नी, बहन, प्रेमिका, देवी, खलनायिका आदि अनेक रूपों में अपनी उपस्थिति दर्जा करवाती आ रही है। हिन्दी सिनेमा के आरंभिक दौर में

स्त्रियों को बहुत ही पारम्परिक एवं घरेलू रूप में दिखाया गया है लेकिन निर्देशकों ने साहस करके उन्हें पारम्परिक भूमिका से बाहर निकाल कर उनके व्यक्तित्व के सशक्त पक्ष को दर्शकों के सामने दिखाने का प्रयास किया है। “समाज की भूल”(1934), “देवदास”(1935), “बाल-योगिनी”(1936), “आदमी”(1939), “दुनिया न माने”(1937) की फिल्मों में अनमेल विवाह की समस्या को उठाया गया है। “अछूत कन्या”(1936) फ़िल्म में छुआछूत जैसे समस्याओं को दर्शकों के सामने लाया है। हिन्दी सिनेमा में स्त्री जीवन से संबन्धित और समाज की विविध समस्याओं को दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया गया है। और “पचास और साठ के दशक में भी हिन्दी सिनेमा में भी अनेक अच्छी अभिनेत्रियाँ थी लेकिन तब ऐसे निर्देशक और फ़िल्में नहीं थी जो किसी अभिनेत्री की प्रतिभा का पूरा अर्थपूर्ण इस्तेमाल कर सकें। ऐसे पटकथा लेखक नहीं थे जो किसी अभिनेत्री की सामर्थ्य को सामने रखकर भूमिकाओं की रचना कर सकें। वहीदा रहमान और नूतन सरीखी अभिनेत्रियों ने अपने समय में अपनी सीमाओं के भीतर अच्छा और अर्थपूर्ण काम किया। लेकिन सत्तर के दशक में हिन्दी सिनेमा में अभिनेत्रियों को ऐसे अवसर मिले जो स्त्री की बदलती छवि के साथ न्याय करते हों और जिनमें अभिनय की भी गुंजाइश हो। इसी दशक में शबाना आज़मी और स्मिता पाटील सरीखी अभिनेत्रियों को उभरने को मौका मिला।”

हिन्दी सिनेमा की स्त्री धर्म और पौराणिक कथाओं से प्रेरित होकर जीती थी। आज़ादी के बाद की फ़िल्में “दहेज”(1950), “पति परमेश्वर”(1958), “हकीकत”(1964), ‘पूरब और पश्चिम”(1970) “कर्मा”(1986), “आदमी”(1993), जैसी फ़िल्मों में स्त्री परिवार और पति के प्रति समर्पित एवं त्यागी तथा पति के अहम को संतुष्ट करे और पति के लिए अपना सब छोड़ कर उस के स्वर से स्वर मिलाकर जिये - भूमिका में दिखाया गया है। हिन्दी सिनेमा में स्त्रियों की भूमिका परिवार के इर्द-गिर्द ही घूमती नज़र आती है।

सत्तर व अस्सी के दशक में में स्त्री की स्थिति में परिवर्तन देखने को मिलता है। अब स्त्री घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्ष करती है। “अर्थ”(1982), “मिर्च मसाला”(1987), “मृत्युदंड”(1997), “दामिनी”(1993) जैसी फिल्मों में समाज के भीतर स्त्री के संघर्ष को दिखाने का प्रयास किया गया है। “मदर इंडिया”(1957) में राधा परिवार के प्रति समर्पण और न्याय के लिए संघर्ष करती हुई एक सशक्त स्त्री और किसान स्त्री के रूप में प्रस्तुत की गयी है।

नब्बे के दशक में जब वैश्वीकरण का दौर आया और भारतीय समाज का विश्व समाज से अपेक्षाकृत अधिक जुड़ा हुआ तो इसका स्पष्ट प्रभाव समाज पर पड़ा। भारतीय स्त्री न्याय के लिए घर-परिवार एवं समाज से कैसे लड़ती है? यह राजकुमार संतोषी द्वारा निर्देशित “दामिनी” (1993) फ़िल्म में देखने को मिलता है। फ़िल्म की नायिक दामिनी (मीनाक्षी शेषाद्रि) का देवर राकेश और उसके तीन मित्र नौकरानी के साथ बलात्कार करते

हैं। दामिनी इस घटना की साक्षी होती है। परिवार इस घटना को छुपाता है लेकिन दामिनी राकेश और उसके तीन मित्र को गिरफ्तार करवाती है और बात अदालत तक पहुँच जाती है। परिवार वाले दामिनी को गवाही न देने के लिए कहते हैं लेकिन दामिनी गवाही देकर नौकरानी को न्याय दिलवाने की ठान लेती है तो परिवार वाले उसे प्रताड़ित करते है। अंत में दामिनी अदालत में गवाही देकर नौकरानी को न्याय दिलवाने में सफल होती है। इस फ़िल्म में दामिनी का चरित्र एक सशक्त रूप में उभर कर सामने आया है। "बाम्बे"1995) में हिन्दू लड़का और मुस्लिम लड़की के प्रेम विवाह से उत्पन्न समस्याओं को दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया गया है। "परदेस"(1997) फ़िल्म में शहर और गाँव की स्त्री के मध्य आंतरिक संवेदना का चित्रण किया गया है।

बीसवीं सदी में आते-आते स्त्री की स्थिति में सुधार आया और अब नायिका अपनी भूमिकाओं और पटकथा का चुनाव करने लगी। इक्कीसवीं सदी में हिन्दी सिनेमा की विषयवस्तु और भी परिपक्क और प्रौढ़ हुई और स्त्री जीवन से जुड़े विविध आयाम और समस्याओं को हिन्दी सिनेमा ने अपनी विषयवस्तु का आधार बनाया जिस पर समाज में बात करना आसान और सहज नहीं था। अंत: स्त्री की भूमिकाओं को महत्व मिलने लगा और स्त्री केंद्रीय फ़िल्मों का निर्माण हुआ और सफलता भी मिली।

राम माधवानी द्वारा निर्देशत फिल्म "नीरजा" एक 23 साल की साहसी नीरजा भनोट के जीवन पर आधारित है। जिसने 1986 कराची में पैन एम विमान की अधिकारी थी जो उड़ान में आंतकियो से 73 यात्रियों की रक्षा करते हुए अपनी जान दे दी थी। एक लड़की समाज की पारम्परिक सोच से ही नहीं लडती बल्कि आंतकवादियों से भी लड़ते हुए कई यात्रियों की जान बचाती है समाज एक क्षण नहीं लगता है स्त्री के चरित पर सवाल उठाने में और उस पर हमला या वार करने में और वही स्त्री इन सब की परवाह न करती हुए सामाजिक और नागरिक होने की सारे दायित्व निभाने से पीछे नहीं हटती हैं। प्रदीप सरकार निर्देशत फिल्म "मरदानी1" में चाइल्ड सेक्स के अवैध व्यापार जैसी समस्याओं को दर्शकों के सामने लाने का प्रयास किया गया है। फ़िल्म की नायिका शिवानी रॉय (रानी मुखर्जी) क्राइम ब्रांच में सीनियर इंस्पेक्टर की बेहतरीन भूमिका निभाती है। जो अपने काम को प्राथमिकता देती है, साहसी और निडर है स्त्री केंद्रित फिल्मों के माध्यम से स्त्री के साथ-साथ समाज की विभिन्न समस्याओं को भी सामने लाया गया है।

पितृसत्तात्मक मानसिकता में अपने अस्तित्व और पहचान के लिए जो लड़ाई स्त्री लड़ रही थी, हिन्दी सिनेमा ने आगे आकर उसकी इस लड़ाई में भागीदारी देकर स्त्रियों के प्रति समाज में परिवर्तन लाने की पहल की है। स्त्री को पुरुष वर्ग के सम्मान बनाने में समाज की भूमिका धीमी और निराशजनक रही है। समाज सदियों से स्त्रियों के प्रति खुलेआम भेदभाव करता आ रहा है। ऐसे लगता है कि स्त्रियां अपने भीतर बहुत कुछ लेकर चल रही है। हिन्दी सिनेमा में स्त्री ने अपनी पहचान को खोजकर उसे स्थापित किया है। फिल्मों में स्त्रियों ने अपनी

मौजूदगी देकर प्रत्येक क्षेत्र में (राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक) अपने सशक्त रूप को सामने रखा है। समाज में भी स्त्री उन सबसे बाहर निकलकर खुद का वजूद बनाकर सम्मानित जीवन जीने में सक्षम है।

इक्कींसवी सदी में पुरानी परम्परा टूटने लगीं और स्त्री भूमंडलीकरण के प्रभाव में ज्यादा मुखर होने लगी। अपने अधिकारों के प्रति जागरक होने लगी और उसकी पतिव्रता, सती, प्रेमिका, पति पूजक जैसे छवि से बाहर निकल कर साहसी, आत्मविश्वास से भरी हुई, आत्मनिर्भर एवं सशक्त रूप में उभर कर सामने आई। हिन्दी सिनेमा में स्त्री को स्वतंत्र, सशक्त एवं संघर्षरत रूप में दिखाया है। "द डर्टी पिक्चर"(2011), "नो वन किल्ड जेसिका"(2011),"फैशन"(2008),"हीरोइन"(2012),"मरदानी1"(2014),"एन.एच.10"(2015),"अकीरा"(2016),"नीरजा"(2016),"मॉम"(2017),"सीक्रेटसुपरस्टार"(2017),"हिचकी"(2018),"राज़ी"(2018),"सांड की आंख"(2019) "थप्पड़"(2020), "छपाक"(2020), "गंगूबाई काठियावाड़ी"(2022) जैसी फिल्मों में तलाक, लिव इन रिलेशन, अवैध चाइल्ड सेक्स जैसे मुद्दों को स्त्री ने सूक्ष्मता से व्यक्त किये है। "पा" फ़िल्म में नायिका अपने गर्भ के लिए किसी को दोषी नहीं मानती है और बच्चे को जन्म देती है। अपने बच्चे को पालती है। यह फ़िल्में समाज में स्त्री के बढ़ते आत्मविश्वास को प्रतिबिम्बित करती है। "सलाम नमस्ते" फिल्म में लिव इन रिलेशन की समस्या को दिखाया गया है। हिन्दी सिनेमा की यह समाज के लिए बहुत बड़ी उपलिब्ध है। अब फिल्म निर्माता इस बात को मानने लगे हैं कि स्त्री सशक्तिकरण में फ़िल्मों का महत्वपूर्ण योगदान है। इस दिशा में कुछ हद तक काम हो रहे हैं।

अनुभव सिन्हा द्वारा निर्देशित "थप्पड़" (2020) में पति अपने सपने पूरे करने में व्यस्त है वहीं अमृता अपने सपनों को भूल कर, घर-परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने में लगी है। यह हमारे समाज की ढेरों स्त्रियों की कहानी है। घर की पार्टी में मेहमानों के सामने पति अमृता को थप्पड़ मरता है। अमृता इस घटना को भूल नहीं पाती है। पति और सुसराल द्वारा पत्नी या बहु-बेटियों को थप्पड़ मारना,मारपीट या उन पर यौन-शोषण करना समाज में यह आम है और वैसे ही अमृता के पति के लिए भी था लेकिन यह स्त्री पर एक थप्पड़ ही नहीं बल्कि उसकी अस्मिता पर प्रहार करने का सबसे पहला हथियार है जिसके खिलाफ़ इस फ़िल्म में अमृता लडती हैं। अमृता इस घरेलू हिंसा के खिलाफ़ लड़ती हुई अनेक स्त्रियों की आवाज बनती है। हिंदी सिनेमा इस तरह का सन्देश देकर पूरे समाज को बदलाव के लिए प्रेरित करता है।

हिन्दी सिनेमा ने स्त्री केंद्रित/ नायिका प्रधान फ़िल्में बनाकर स्त्री की अस्मिता, अस्तित्व, संघर्ष और उसके सशक्त पक्ष की झलक को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। फ़िल्मों में स्त्री के दोनों रूपों को प्रस्तुत किया है। एक वह स्त्री जो, पितृसत्तात्मक मानसिकता को साथर्कता से अपनाकर जीना अर्थात प्रेम को महत्व न देकर समाज के बनाए संस्कार और परम्परा को महत्व देकर अपने जीवन में उतारे। समाज स्त्री को प्रेम करना सिखाता

है, लेकिन उसके प्रेम को स्वीकारता नहीं है बल्कि उन्हें दूसरे के प्रेम को महत्व देकर अपनाना भली भांति सिखाता है। स्त्री के त्याग, समर्पण, तपस्या को समाज बड़ी सरलता से कर्तव्य का नाम देता है। जो स्त्री अपनी इच्छानुसार जीवन जीती है, छोटे वस्त्र पहनती है, पुरुषों से बातें करती है, शराब और सिगरेट पीती है। दूसरों से पहले खुद के लिए जीती है उसे खलनायिका का नाम दिया जाता हैं अर्थात उसे खलनायिका के रूप में दिखाया जाता है।

हिन्दी सिनेमा ने आरंभ से लेकर आज तक लगातार समाज में बदलती स्त्री की छवि का सटीकता से प्रतिबिम्बन किया है। सती से सशक्तिकरण की यात्रा स्त्री ने ऊबड़ खाबड़ रास्तों से तय की है। स्त्री केंद्रित फिल्मों के माध्यम से स्त्री की बदलती छवि को बड़ी सरलता से समझ जा सकता है। दृढ़ संकल्पि नायिकाओं की एक लम्बी श्रंखला समाज में दर्जा है। अंकुर से गंगूबाई तक फ़िल्मों में स्त्री ने अपने सशक्त रूप को दर्शकों व समाज में ही नही बल्कि पूरे विश्व में दिखाया है। स्त्री अपने पति से असंतुष्ट और अपने जीवन के स्वंय निर्णय लेने के मुद्दों पर कई फ़िल्में बनी है। मधुर भंडारकर द्वारा निर्देशित “सत्ता”(2003) फ़िल्म में नायिका पति के इलावा भी दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध बनाती है क्योंकि उसके पति के भी कई स्त्रियों से सम्बन्ध है। स्त्री केंद्रित फ़िल्मों के माध्यम से स्त्रियों की चीखें, गुहार, पुकार, बिनती को उन तक पहुँचाने की कोशिश की है जो उन्हें सुनकर अनसुना कर देते हैं। कहते है राजा वही अच्छा, जिसके राज में प्रजा सुखी और समृद्ध हो, अच्छा पिता वही जिसके राज में सबसे सुखी और स्वतंत्र पुत्री हो, इसी तरह समाज भी वही सभ्य है जहाँ स्त्रियों को सम्मान मिलता हों। पितृसत्तात्मक विचारधारा ने समाज को इस तरह से जकड़ लिया है कि समाज में स्त्री की कामयाबी एवं सफलता के पीछे उसके देह को देखता हैं चाहें हम कितने भी पश्चिम सभ्यता को शरीर पर लाद लें। इक्कींसवी सदी के तकनीकी युग में रहकर भी रीति-रिवाज एवं परम्परा की बेड़ियां से बंधा है। आज समाज को पश्चिम सभ्यता के पहनावे के साथ पश्चिमी सोच, मानसिकता, खुली विचारधारा अपनाने की आवश्यकता है।

इक्कीसवीं सदी का हिंदी सिनेमा स्त्रियों के जीवन की बड़ी और गंभीर समस्याओं पर ही नहीं बल्कि रोज़मर्रा की मामूली सी समस्याओं पर भी गंभीर चिंतन हुआ है। पहले जहाँ पौराणिक फ़िल्मों में स्त्री भूमिका प्रधानता थी और प्रमुख पात्र पुरुष के हिस्से में आता आ रहा था और पूरी फ़िल्म की सफलता एक स्त्री प्रधान भूमिका वाली फिल्म को सोचा ही नहीं जा जाता था, वहीँ आज ऐसी फिल्म बन रही है जिन्हें स्त्री प्रधान की भूमिका को ध्यान में रखकर बनाया जा रहा है। “क्वीन”, “मर्दानी”, “कहानी”, “थप्पड़”, “छपाक”, “अकीरा” आदि अनेक फिल्मों के नाम इस विषय में लिए जा सकते हैं। यहाँ तक कि अब उम्रदराज़ अभिनेत्रियों को भी भाभी और माँ के किरदार के आलावा अन्य महत्वपूर्ण भूमिकाएं भी दी जा रही हैं। “इस सन्दर्भ में सन् 2003 में ‘तहजीब’ फ़िल्म में मुख्य भूमिका निभा चुकी शबाना आज़मी कहती हैं कि -पिछले कुछ सालों में मुझे अपने

कैरियर के अच्छे और जटिल किरदार मिले। अच्छी बात है कि हिन्दी फ़िल्मों में भी चालीस साल के ऊपर की उम्र की औरत की ज़िन्दगी पर फ़िल्में बन रही हैं। मुझे और दूसरी अभिनेत्रियों को अच्छे मौके मिल रहे हैं, अन्यथा मेरी उम्र की अभिनेत्रियों तो माँ और भाभी की घिसी-पिटी भूमिकाओं तक ही सीमित हो जाती है।" इस तरह आज हिन्दी सिनेमा में स्त्री भूमिकाओं को भी पुरुष/नायक के जैसे महत्वता दी जाने लगी और स्त्री जीवन और उसकी चेतना, समस्याओं को लेकर फ़िल्मों की संख्या बढ़ रही हैं और स्त्री/नायिका प्रधान फ़िल्मों की सार्थक और सामाजिक परस्पर व्यवहारिक संबंधों से जुड़ता सिनेमा सकारात्मक सन्देश दे रही हैं।

हिन्दी सिनेमा ने समाज की टूटती परम्परा को निडर होकर पर्दे पर प्रस्तुत की गई। समाज की परंपरागत भूमिका से हटाकर उसके स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान कराता है। हिन्दी सिनेमा ने अत्याचार, अन्याय और शोषण के विरुद्ध संघर्ष, स्त्री सामर्थ्य की खोज एवं पहचान, स्त्री की मानसिकता में बदलाव देकर उसे एक नयी दिशा प्रदान करता है। हिन्दी सिनेमा ने समकालीन समाज में स्त्री की स्थिति और उससे जुडी़ समस्याओं, प्रवृतियों एवं चुनौतियों को बड़ी कुशलता से दिखाया है। हमारा यह कर्तव्य बनता है कि हम अपनी आने वाली पीढ़ी को अच्छी सोच, संस्कार, अच्छी शिक्षा और नैतिक मूल्यों को सार्थक कर उन्नत और सुसंस्कृत समाज का निर्माण करें। सिनेमा ने स्त्रियों को रोजगार का अवसर देकर इनको आर्थिक रूप से भी मज़बूत किया है। सिनेमाई स्त्री के स्वतंत्रत और सशक्त का असर स्त्री समाज में तेज़ी से देखने को मिल रहा है आज शहर में ही नहीं गाँव में भी स्त्रियां जीन्स, शर्ट, टी-शर्ट, कपड़े पहनने लगी है और सशक्त बनने को उत्सुकता दिखाने लगी है। हिन्दी सिनेमा में स्त्री की वास्तविक स्थिति व भूमिका का ही पता नहीं चलता बल्कि इसकी सहायता से स्त्री सशक्तिकरण की नीतियों के निर्धारण में भी सहयोग मिलता है, जो हिन्दी सिनेमा को एक नया आयाम प्रदान करता है। आज सिनेमा पर भी कार्य करने की आवश्यकता हैं।

संदर्भित गन्थ:

1)परिवर्तन पत्रिका: महेश सिंह, पुददुचेरी विश्वविद्यालय
2) सिनेमा और इतिहास: डॉ. चन्द्रभूषण गुप्ता, शशि प्रकाशन, संस्करण 2012
3) विश्व सिनेमा में स्त्री : विजय शर्मा, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2018
4) सिनेमा और साहित्य ; डॉ. हरीश कुमार, संजय प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2010
5) 21वीं सदी का हिन्दी साहित्य एवं सिनेमा : प्रो. कनुभाई वीं निनाम, वान्या पब्लिकेशंस प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2021
6) नीरजा: राम माधवनी , रिलीज़ 2016
7) थप्पड़: अनुभव सिन्हा, रिलीज़ 2020
8) सिनेमा कल, आज और कल : विनोद भारद्वाज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012
9) हिन्दी सिनेमा दलित-आदिवासी विमर्श: प्रमोद मीणा, अनन्य प्रकाशन, संस्करण 2018, पृ. 2018
10) इक्कीसवीं सदी का सिनेमा : स्त्री चेतना के विविध आयाम-डॉ.सुषमा सहरावत, 2019
11) www. हस्तक्षेप.कॉम
12) www. हिन्दीसमय.कॉम
13) www. सबलोग. कॉम
14) www.ब्लागस्पाट. कॉम
15) उतर वाहिन पत्रिका - सिनेमा विशेषांक : संजीव जैन, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय से
16) बहुबचन पत्रिका : अशोक मिश्र, महात्मा गाँधी अंतराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा का प्रकाशन
17) हिन्दी सिनेमा के सौ साल – जनचेतना का प्रगितशील कथा मासिक, फरवरी 2013

शोधार्थी – अमनप्रीत
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय
amanpreetcujammu@gmail.com